2. प्राचीन भारतीय इतिहास के स्त्रोत

[The Sources of Ancient Indian History]

प्राचीन भारतीय इतिहास के विविध स्त्रोत हैं। यद्यपि प्राचीन भारतीयों में इतिहास-लेखन की वैसी शृंखलाबद्ध परंपरा नहीं थी, जैसा हम प्राचीन यूनान या रोम में पाते हैं, तथापि प्राचीन भारत में विभिन्न विषयों से संबद्ध अनेक ऐसे ग्रंथों की रचना हुई, जो प्राचीन इतिहास की जानकारी उपलब्ध कराते हैं। इन ग्रंथों की विषयवस्तु धर्म; सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक जीवन और प्रशासनिक व्यवस्था तथा नीतिशास्त्र से संबद्ध है। अनेक काव्यों, महाकाव्यों और नाटकों की भी रचना प्राचीन भारत में हुई, जो तत्कालीन अवस्था की जानकारी प्रदान करते हैं। साहित्यिक स्त्रोतों के अतिरिक्त पुरातात्त्विक साधनों से भी हमें प्राचीन भारतीय इतिहास का ज्ञान प्राप्त होता है।

2.1. ऐतिहासिक स्त्रोतों का वर्गीकरण *(Classification of the Sources)*

प्राचीन भारतीय इतिहास के स्त्रोतों को मुख्यरूप से दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है—**साहित्यिक स्त्रोत** एवं **पुरातात्त्विक स्त्रोत**। साहित्यिक स्त्रोतों की भी अनेक श्रेणियाँ बनाई जा सकती हैं। मोटे तौर पर साहित्यिक साधनों को देशी और विदेशी साहित्य के अंतर्गत रखा जा सकता है। पुनः, देशी साहित्य में धार्मिक एवं अर्द्ध-ऐतिहासिक श्रेणियाँ बनाई जा सकती हैं। इसी प्रकार, विदेशी साहित्य के अंतर्गत हम उन यूनानी, रोमन, चीनी, तिब्बती, अरब और तुर्क यात्रियों के यात्रा विवरणों को रख सकते हैं जिन्होंने भारतीय इतिहास, सभ्यता एवं संस्कृति के विभिन्न पहलुओं पर अपने विचार रखे हैं। भारतीय इतिहास के लिए साहित्यिक स्त्रोत ही यथेष्ट नहीं हैं। अनेक विस्मृत संस्कृतियों एवं महत्त्वपूर्ण घटनाओं की जानकारी हमें पुरातात्त्विक साधनों से भी मिलती है। वस्तुतः, पुरातात्त्विक सामग्री भारतीय इतिहास की उन अनेक विस्मृत घटनाओं से हमारा परिचय कराती है, जिनका उल्लेख साहित्यिक ग्रंथों में नहीं मिलता है। इसके अतिरिक्त भारतीय साहित्य एवं विदेशी यात्रियों के अनेक विवरणों को पुष्ट करने में भी इनसे सहायता मिलती है। उत्खननों द्वारा प्राप्त पुरावशेष, मुद्रा, अभिलेख इत्यादि भारतीय इतिहास एवं सभ्यता के विभिन्न आयामों को प्रकट करते हैं। अतः, साहित्यिक स्त्रोतों के अतिरिक्त पुरातात्त्विक साधनों की जानकारी भी नितांत आवश्यक है। वस्तुतः, दोनों वर्गों के स्त्रोतों के संतुलित अध्ययन के आधार पर ही प्राचीन भारतीय इतिहास का निरपेक्ष अध्ययन किया जा सकता है।

2.1(a). साहित्यिक स्त्रोत *(The Literary Sources)*

प्राचीन भारतीय इतिहास के स्त्रोत के रूप में विभिन्न साहित्यिक ग्रंथों का अपना अलग ही महत्त्व है। यद्यपि साहित्यिक स्त्रोत अनेक त्रुटियों से परिपूर्ण हैं, उनमें ऐतिहासिकता एवं तिथिक्रम का अभाव है, विवरण अतिशयोक्तिपूर्ण हैं और इनमें पूर्वाग्रह भी देखने को मिलता है, तथापि इन ग्रंथों की उपेक्षा नहीं की जा सकती। साहित्यिक ग्रंथ भारतीय इतिहास के विभिन्न पहलुओं पर जितना अधिक प्रकाश डालते हैं, उनकी तुलना में पुरातात्त्विक साधनों का योगदान, विशेषतया आर्यों की प्रारंभिक सभ्यता के संदर्भ में कम ही है। वस्तुतः, साहित्यिक ग्रंथों से प्राप्त जानकारी को अन्य स्त्रोतों की सहायता से ऐतिहासिकता की कसौटी पर कसकर ही भारतीय इतिहास की सही जानकारी प्राप्त हो सकती है।

उपलब्ध साहित्य, जो भारतीय इतिहास के पुनर्निर्माण में सहायता प्रदान करते हैं, उन्हें मोटे तौर पर दो श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है—देशी साहित्य और विदेशी साहित्य। देशी

साहित्य के भी दो भाग हैं—धर्मग्रंथ और ऐतिहासिक तथा अर्द्ध-ऐतिहासिक साहित्यिक ग्रंथ। विदेशी साहित्य के अंतर्गत अनेक वैसे यात्रियों के यात्रा-विवरण हैं, जो समय-समय पर भारत आए, यहाँ की स्थिति को अपनी आँखों से देखा और उनका विवरण हमारे लिए लिख छोड़ा है। इन सभी ग्रंथों से भारतीय इतिहास की जानकारी हमें प्राप्त होती है।

देशी साहित्य—भारतीय इतिहास पर सबसे अधिक प्रकाश देशी साहित्य से ही पड़ता है। देशी साहित्य की संख्या बहुत बड़ी है। इसमें धार्मिक ग्रंथ, ऐतिहासिक ग्रंथ, अर्द्ध-ऐतिहासिक ग्रंथ, महाकाव्य, काव्य, नाटक, विभिन्न विषयों से संबद्ध ग्रंथ इत्यादि रखे जा सकते हैं। इन ग्रंथों से प्राचीन भारत के राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास की जानकारी मिलती है।

धार्मिक ग्रंथ—देशी साहित्य में सबसे प्रमुख स्थान धार्मिक साहित्य का है। ब्राह्मण, बौद्ध एवं जैन धर्मों से संबद्ध अनेक ग्रंथों की रचना प्राचीन भारत में हुई, जो विस्मृत इतिहास पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश डालते हैं।

(क) ब्राह्मण-धर्मग्रंथ—धार्मिक ग्रंथों में सबसे प्रमुख स्थान ब्राह्मण-धर्मग्रंथों का है। यद्यपि अन्य धर्मग्रंथों की ही तरह ब्राह्मण-धर्मग्रंथों की रचना भी धार्मिक भावना से प्रेरित होकर ही हुई थी, उनमें ऐतिहासिकता का अभाव है, राजनीतिक महत्त्व के कम तथ्य हैं, तथापि सांस्कृतिक इतिहास के अध्ययन के लिए उनके महत्त्व की उपेक्षा नहीं की जा सकती। ब्राह्मण-धर्मग्रंथ अनेक प्रकार के हैं; जैसे—**वेद, ब्राह्मण-धर्मग्रंथ, आरण्यक, उपनिषद, वेदांग, स्मृति** इत्यादि।

वेद (संहिता या श्रुति)—ब्राह्मण-धर्मग्रंथों में सर्वश्रेष्ठ स्थान वेदों, श्रुति या संहिता को प्रदान किया गया है। इनकी संख्या चार है—**ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद** और **अथर्ववेद**। इन चारों वेदों में सबसे प्रधान **ऋग्वेद** है। यह आर्यों का प्राचीनतम ग्रंथ है। आर्यों के प्रारंकि जीवन की जानकारी प्राप्त करने का यह एकमात्र साधन है; क्योंकि पुरातात्त्विक प्रमाण भी आर्यों के प्रारंभिक जीवन की जानकारी नहीं देते। **ऋग्वेद** 10 **मंडलों** एवं 1028 **सूक्तों** में विभक्त है। दूसरे से नवें मंडल तक के सूक्त सबसे पुराने हैं; प्रथम और अंतिम मंडल बाद में जोड़े गए। इस ग्रंथ में विभिन्न देवताओं की स्तुति में गाए गए मंत्रों का संग्रह है। **ऋग्वेद** की रचना किस समय हुई, यह निश्चित तौर पर बताना कठिन है। संभवतः, इसकी रचना 1500-1000 ई० पू० के बीच सप्त-सैंधव प्रदेश में हुई थी। **ऋग्वेद** और ईरानी ग्रंथ **जेंद अवेस्ता** *(Zenda Avesta)* में आश्चर्यजनक समानता पाई जाती है। दूसरा प्रमुख वेद **सामवेद** है। यह गान-प्रधान ग्रंथ है। इसमें उन ऋचाओं का संग्रह है, जिन्हें पुरोहित **(उद्गाता)** यज्ञ के समय गाते थे। इस वेद से कोई नई जानकारी नहीं मिलती है। इसमें करीब 1550 मंत्र हैं, जिनमें से 75 के अतिरिक्त सभी ऋग्वेद में मिलते हैं। **यजुर्वेद** में विभिन्न यज्ञ-विधियों का संग्रह है। इसकी पाँच शाखाएँ हैं—**काठक, कपिष्ठल, मैत्रायणी, तैत्तिरीय** और **वाजसनेयी**। इनमें से प्रथम चार 'कृष्ण' या 'श्याम' (black) **यजुर्वेद** और अंतिम 'शुक्ल' (white) **यजुर्वेद** के नाम से विख्यात है। 'शुक्ल' में सिर्फ मंत्र हैं परंतु 'कृष्ण' में मंत्रों के साथ-साथ उनकी व्याख्या भी मिलती है। यजुर्वेद से उत्तर-वैदिक युग की राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक जीवन की जानकारी मिलती है। अंतिम वेद **अथर्ववेद** है। यह 20 मंडलों में विभक्त है। इसमें करीब 731 ऋचाएँ पद्य और गद्य में हैं। इसमें जादू-मंत्र, टोना, ताबीज, चिकित्सा, धनुर्विद्या इत्यादि से संबद्ध तथ्य हैं। **ऋग्वेद** के अतिरिक्त अन्य वेदों और वैदिक साहित्य की रचना करीब 1000-500 ई० पू० के मध्य कुरु-पांचाल-क्षेत्र में हुई थी। वेदों से आर्यों के राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक जीवन की जानकारी मिलती है। इस प्रकार, वेद भारतीय इतिहास के प्रमुख स्रोत हैं।

ब्राह्मणग्रंथ—वेदों के पश्चात ब्राह्मणग्रंथ आते हैं। इन्हें पद्य में रचा गया। इन्हें वेदों की टीका कहा जा सकता है। उत्तर-वैदिक आर्यों की सभ्यता पर इनसे महत्त्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है। प्रत्येक **ब्राह्मण** एक **वेद** या **संहिता** से संबद्ध है। **ऐतरेय** और **कौषीतकी ब्राह्मण ऋग्वेद** से, **शतपथब्राह्मण यजुर्वेद** से, **पंचविंशब्राह्मण सामवेद** से तथा **गोपथ-ब्राह्मण अथर्ववेद** से संबद्ध हैं। ब्राह्मणग्रंथ आर्यों के राजनीतिक जीवन के अतिरिक्त सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक जीवन की झाँकी प्रस्तुत करते हैं तथापि इनमें मुख्यतः यज्ञों एवं उनकी विधियों का वर्णन किया गया है।

आरण्यक—ब्राह्मणग्रंथ का ही भाग **आरण्यक** भी हैं। ये ग्रंथ अरण्यों (वनों) में निवास करनेवाले संन्यासियों के मार्गदर्शन के लिए लिखे गए थे। इनमें यज्ञों एवं धार्मिक अनुष्ठानों के

अतिरिक्त दार्शनिक प्रश्नों की भी चर्चा की गई है, जो भारतीय दर्शन का ज्ञान उपलब्ध कराते हैं। प्रमुख **आरण्यकों** में **ऐतरेय, तैत्तिरीय** और **मैत्रायणी** आरण्यकों का उल्लेख किया जा सकता है। आरण्यकों ने जिस दार्शनिक विचारधारा का आरंभ किया उसका विकास उपनिषदों में हुआ।

उपनिषद—आरण्यकों में जिस दार्शनिक विचारधारा का प्रारंभ हम पाते हैं, उन्हीं का विस्तृत स्वरूप उपनिषदों में देखने को मिलता है। वस्तुतः, उपनिषदों में प्राचीन भारत का दार्शनिक ज्ञान सुरक्षित है। इन ग्रंथों में जीव, आत्मा, परमात्मा, ब्रह्म, कर्म तथा सृष्टि से संबद्ध दार्शनिक एवं रहस्यात्मक प्रश्नों की विवेचना की गई है। इन ग्रंथों में धार्मिक कर्मकांडों, यज्ञ, बलि इत्यादि की तीखी आलोचना भी की गई है। उपनिषदों की संख्या 108 है। प्रमुख उपनिषदों में **ईश, केन, कठ, छांदोग्य, बृहदारण्यक** इत्यादि का उल्लेख किया जा सकता है। उपनिषदों से राजनीतिक इतिहास का भी ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। इनकी रचना लगभग 800-500 ई० पू० के मध्य हुई। उपनिषदों ने जिस निष्काम कर्म मार्ग और भक्ति मार्ग का दर्शन दिया उसका विकास **भगवद्गीता** में हुआ।

वेदांग—वेदांग वेद के अंतिम भाग माने जाते हैं। वैदिक अध्ययन के लिए विद्या की विशिष्ट शाखाओं का जन्म हुआ, जो **वेदांग** के रूप में विख्यात हुए। **मुंडक-उपनिषद्** में वेदांगों का उल्लेख किया गया है। ये वेदांग थे—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंद और ज्योतिष।[1] वैदिक मंत्रों के सही उच्चारण के लिए 'शिक्षा' का विकास हुआ। 'कल्प' में विभिन्न विधानों का संकलन है, जो **कल्पसूत्र** के नाम से विख्यात है। कल्पसूत्र चार भागों में विभक्त है—**श्रौतसूत्र** (यज्ञ-संबंधी नियम), **गृह्यसूत्र** (मानव-जीवन के कार्यकलाप से संबद्ध संस्कार, नियम इत्यादि), **धर्मसूत्र** (सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक नियम) तथा **शुल्वसूत्र** (यज्ञ एवं हवनकांडों से संबद्ध नियमों का संकलन)। सूत्र-साहित्य की रचना गद्य और पद्य दोनों में की गई। सूत्र-साहित्य में प्रमुख हैं **आपस्तंब गृह्यसूत्र, बौधायन गृह्यसूत्र, आपस्तंब धर्मसूत्र, बौधायन धर्मसूत्र, गौतम धर्मसूत्र, अश्वलायन श्रौतसूत्र** इत्यादि। भाषा के विकास के साथ 'व्याकरण' की आवश्यकता पड़ी। इस विषय पर दो प्रमुख ग्रंथ लिखे गए—पाणिनि की **अष्टाध्यायी** एवं पतंजलि का **महाभाष्य**। यास्क ने **निरुक्त** की रचना की जिसमें शब्दों की उत्पत्ति, निर्माण तथा अर्थ की विवेचना की गई। 'छंद' के विकास से भाषा के विकास एवं छंद के प्रयोग की जानकारी मिलती है। 'ज्योतिष' में ब्रह्मांड, सौरमंडल, नक्षत्रों इत्यादि का वर्णन किया गया। इस विषय पर बाद में वराहमिहिर ने **बृहत्संहिता** लिखी, जो भारतीय ज्योतिष की प्रामाणिक जानकारी देती है। ये सारे ग्रंथ प्राचीन भारतीय इतिहास, सभ्यता एवं संस्कृति की जानकारी प्राप्त करने में हमारी सहायता करते हैं।

उपवेद एवं षड्दर्शन—वैदिक साहित्य की श्रेणी में उपवेदों और भारतीय दर्शन की 6 शाखाओं (षड्दर्शन) को भी स्थान दिया जाता है। उपवेद में सबसे प्रमुख स्थान **आयुर्वेद** का है। इसके अंतर्गत विभिन्न रोगों की पहचान, उनकी दवा, जड़ी-बूटियों आदि का महत्त्व बताया गया है। कहा जाता है कि इस विद्या के जन्मदाता प्रजापति (ब्रह्मा) थे। आयुर्वेद के आठ भाग हैं—शल्य, शालाक्य, काय-चिकित्सा, भूतविद्या, कुमारभृत्य, अगदतंत्र, रसायन और वाजीकरण।[2] अन्य उपवेदों में **धनुर्वेद** (युद्धकला), **गंधर्ववेद** (संगीतकला) और **शिल्पवेद** (भवननिर्माणकला) आते हैं। धनुर्वेद के जन्मदाता विश्वामित्र, गंधर्व के नारद और शिल्प के विश्वकर्मा माने जाते हैं। इन ग्रंथों से प्राचीन भारत में प्रचलित विभिन्न विधाओं का ज्ञान हमें प्राप्त होता है। दर्शन की शाखाओं में न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, पूर्वमीमांसा और उत्तरमीमांसा आते हैं। इनसे भारतीय दर्शन के विभिन्न आयामों का पता चलता है। इनका रचना काल छठी शताब्दी ई० पू० से तीसरी शताब्दी ई० पू० माना जाता है। **न्याय दर्शन** के प्रवर्तक गौतम थे जिन्होंने तर्क पर बल दिया। **वैशेषिक दर्शन** के संस्थापक कणद ऋषि थे जिन्होंने पदार्थ को अपने दर्शन का आधार बनाया। **सांख्य दर्शन** ईश्वर में विश्वास नहीं रखता है। कपिल ने इसकी

साहित्य के भी दो भाग हैं—धर्मग्रंथ और ऐतिहासिक तथा अर्द्ध-ऐतिहासिक साहित्यिक ग्रंथ। विदेशी साहित्य के अंतर्गत अनेक वैसे यात्रियों के यात्रा-विवरण हैं, जो समय-समय पर भारत आए, यहाँ की स्थिति को अपनी आँखों से देखा और उनका विवरण हमारे लिए लिख छोड़ा है। इन सभी ग्रंथों से भारतीय इतिहास की जानकारी हमें प्राप्त होती है।

देशी साहित्य—भारतीय इतिहास पर सबसे अधिक प्रकाश देशी साहित्य से ही पड़ता है। देशी साहित्य की संख्या बहुत बड़ी है। इसमें धार्मिक ग्रंथ, ऐतिहासिक ग्रंथ, अर्द्ध-ऐतिहासिक ग्रंथ, महाकाव्य, काव्य, नाटक, विभिन्न विषयों से संबद्ध ग्रंथ इत्यादि रखे जा सकते हैं। इन ग्रंथों से प्राचीन भारत के राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास की जानकारी मिलती है।

धार्मिक ग्रंथ—देशी साहित्य में सबसे प्रमुख स्थान धार्मिक साहित्य का है। ब्राह्मण, बौद्ध एवं जैन धर्मों से संबद्ध अनेक ग्रंथों की रचना प्राचीन भारत में हुई, जो विस्मृत इतिहास पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश डालते हैं।

(क) ब्राह्मण-धर्मग्रंथ—धार्मिक ग्रंथों में सबसे प्रमुख स्थान ब्राह्मण-धर्मग्रंथों का है। यद्यपि अन्य धर्मग्रंथों की ही तरह ब्राह्मण-धर्मग्रंथों की रचना भी धार्मिक भावना से प्रेरित होकर ही हुई थी, उनमें ऐतिहासिकता का अभाव है, राजनीतिक महत्त्व के कम तथ्य हैं, तथापि सांस्कृतिक इतिहास के अध्ययन के लिए उनके महत्त्व की उपेक्षा नहीं की जा सकती। ब्राह्मण-धर्मग्रंथ अनेक प्रकार के हैं; जैसे—**वेद, ब्राह्मण-धर्मग्रंथ, आरण्यक, उपनिषद, वेदांग, स्मृति** इत्यादि।

वेद (संहिता या श्रुति)—ब्राह्मण-धर्मग्रंथों में सर्वश्रेष्ठ स्थान वेदों, श्रुति या संहिता को प्रदान किया गया है। इनकी संख्या चार है—**ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद** और **अथर्ववेद**। इन चारों वेदों में सबसे प्रधान **ऋग्वेद** है। यह आर्यों का प्राचीनतम ग्रंथ है। आर्यों के प्रारंकि जीवन की जानकारी प्राप्त करने का यह एकमात्र साधन है; क्योंकि पुरातात्त्विक प्रमाण भी आर्यों के प्रारंभिक जीवन की जानकारी नहीं देते। **ऋग्वेद** 10 **मंडलों** एवं 1028 **सूक्तों** में विभक्त है। दूसरे से नवें मंडल तक के सूक्त सबसे पुराने हैं; प्रथम और अंतिम मंडल बाद में जोड़े गए। इस ग्रंथ में विभिन्न देवताओं की स्तुति में गाए गए मंत्रों का संग्रह है। **ऋग्वेद** की रचना किस समय हुई, यह निश्चित तौर पर बताना कठिन है। संभवतः, इसकी रचना 1500-1000 ई० पू० के बीच सप्त-सैंधव प्रदेश में हुई थी। **ऋग्वेद** और ईरानी ग्रंथ **जेंद अवेस्ता** *(Zenda Avesta)* में आश्चर्यजनक समानता पाई जाती है। दूसरा प्रमुख वेद **सामवेद** है। यह गान-प्रधान ग्रंथ है। इसमें उन ऋचाओं का संग्रह है, जिन्हें पुरोहित **(उद्गाता)** यज्ञ के समय गाते थे। इस वेद से कोई नई जानकारी नहीं मिलती है। इसमें करीब 1550 मंत्र हैं, जिनमें से 75 के अतिरिक्त सभी ऋग्वेद में मिलते हैं। **यजुर्वेद** में विभिन्न यज्ञ-विधियों का संग्रह है। इसकी पाँच शाखाएँ हैं—**काठक, कपिष्ठल, मैत्रायणी, तैत्तिरीय** और **वाजसनेयी**। इनमें से प्रथम चार 'कृष्ण' या 'श्याम' (black) **यजुर्वेद** और अंतिम 'शुक्ल' (white) **यजुर्वेद** के नाम से विख्यात है। 'शुक्ल' में सिर्फ मंत्र हैं परंतु 'कृष्ण' में मंत्रों के साथ-साथ उनकी व्याख्या भी मिलती है। यजुर्वेद से उत्तर-वैदिक युग की राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक जीवन की जानकारी मिलती है। अंतिम वेद **अथर्ववेद** है। यह 20 मंडलों में विभक्त है। इसमें करीब 731 ऋचाएँ पद्य और गद्य में हैं। इसमें जादू-मंत्र, टोना, ताबीज, चिकित्सा, धनुर्विद्या इत्यादि से संबद्ध तथ्य हैं। **ऋग्वेद** के अतिरिक्त अन्य वेदों और वैदिक साहित्य की रचना करीब 1000-500 ई० पू० के मध्य कुरु-पांचाल-क्षेत्र में हुई थी। वेदों से आर्यों के राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक जीवन की जानकारी मिलती है। इस प्रकार, वेद भारतीय इतिहास के प्रमुख स्रोत हैं।

ब्राह्मणग्रंथ—वेदों के पश्चात ब्राह्मणग्रंथ आते हैं। इन्हें पद्य में रचा गया। इन्हें वेदों की टीका कहा जा सकता है। उत्तर-वैदिक आर्यों की सभ्यता पर इनसे महत्त्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है। प्रत्येक **ब्राह्मण** एक **वेद** या **संहिता** से संबद्ध है। **ऐतरेय** और **कौषीतकी ब्राह्मण ऋग्वेद** से, **शतपथब्राह्मण यजुर्वेद** से, **पंचविंशब्राह्मण सामवेद** से तथा **गोपथ-ब्राह्मण अथर्ववेद** से संबद्ध हैं। ब्राह्मणग्रंथ आर्यों के राजनीतिक जीवन के अतिरिक्त सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक जीवन की झाँकी प्रस्तुत करते हैं तथापि इनमें मुख्यतः यज्ञों एवं उनकी विधियों का वर्णन किया गया है।

आरण्यक—ब्राह्मणग्रंथ का ही भाग **आरण्यक** भी हैं। ये ग्रंथ अरण्यों (वनों) में निवास करनेवाले संन्यासियों के मार्गदर्शन के लिए लिखे गए थे। इनमें यज्ञों एवं धार्मिक अनुष्ठानों के

अतिरिक्त दार्शनिक प्रश्नों की भी चर्चा की गई है, जो भारतीय दर्शन का ज्ञान उपलब्ध कराते हैं। प्रमुख **आरण्यकों** में **ऐतरेय, तैत्तिरीय** और **मैत्रायणी** आरण्यकों का उल्लेख किया जा सकता है। आरण्यकों ने जिस दार्शनिक विचारधारा का आरंभ किया उसका विकास उपनिषदों में हुआ।

उपनिषद—आरण्यकों में जिस दार्शनिक विचारधारा का प्रारंभ हम पाते हैं, उन्हीं का विस्तृत स्वरूप उपनिषदों में देखने को मिलता है। वस्तुतः, उपनिषदों में प्राचीन भारत का दार्शनिक ज्ञान सुरक्षित है। इन ग्रंथों में जीव, आत्मा, परमात्मा, ब्रह्म, कर्म तथा सृष्टि से संबद्ध दार्शनिक एवं रहस्यात्मक प्रश्नों की विवेचना की गई है। इन ग्रंथों में धार्मिक कर्मकांडों, यज्ञ, बलि इत्यादि की तीखी आलोचना भी की गई है। उपनिषदों की संख्या 108 है। प्रमुख उपनिषदों में **ईश, केन, कठ, छांदोग्य, बृहदारण्यक** इत्यादि का उल्लेख किया जा सकता है। उपनिषदों से राजनीतिक इतिहास का भी ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। इनकी रचना लगभग 800-500 ई० पू० के मध्य हुई। उपनिषदों ने जिस निष्काम कर्म मार्ग और भक्ति मार्ग का दर्शन दिया उसका विकास **भगवद्गीता** में हुआ।

वेदांग—वेदांग वेद के अंतिम भाग माने जाते हैं। वैदिक अध्ययन के लिए विद्या की विशिष्ट शाखाओं का जन्म हुआ, जो **वेदांग** के रूप में विख्यात हुए। **मुंडक-उपनिषद्** में वेदांगों का उल्लेख किया गया है। ये वेदांग थे—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंद और ज्योतिष।[1] वैदिक मंत्रों के सही उच्चारण के लिए 'शिक्षा' का विकास हुआ। 'कल्प' में विभिन्न विधानों का संकलन है, जो **कल्पसूत्र** के नाम से विख्यात है। कल्पसूत्र चार भागों में विभक्त है—**श्रौतसूत्र** (यज्ञ-संबंधी नियम), **गृह्यसूत्र** (मानव-जीवन के कार्यकलाप से संबद्ध संस्कार, नियम इत्यादि), **धर्मसूत्र** (सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक नियम) तथा **शुल्वसूत्र** (यज्ञ एवं हवनकांडों से संबद्ध नियमों का संकलन)। सूत्र-साहित्य की रचना गद्य और पद्य दोनों में की गई। सूत्र-साहित्य में प्रमुख हैं **आपस्तंब गृह्यसूत्र, बौधायन गृह्यसूत्र, आपस्तंब धर्मसूत्र, बौधायन धर्मसूत्र, गौतम धर्मसूत्र, अश्वलायन श्रौतसूत्र** इत्यादि। भाषा के विकास के साथ 'व्याकरण' की आवश्यकता पड़ी। इस विषय पर दो प्रमुख ग्रंथ लिखे गए—पाणिनि की **अष्टाध्यायी** एवं पतंजलि का **महाभाष्य**। यास्क ने **निरुक्त** की रचना की जिसमें शब्दों की उत्पत्ति, निर्माण तथा अर्थ की विवेचना की गई। 'छंद' के विकास से भाषा के विकास एवं छंद के प्रयोग की जानकारी मिलती है। 'ज्योतिष' में ब्रह्मांड, सौरमंडल, नक्षत्रों इत्यादि का वर्णन किया गया। इस विषय पर बाद में वराहमिहिर ने **बृहत्संहिता** लिखी, जो भारतीय ज्योतिष की प्रामाणिक जानकारी देती है। ये सारे ग्रंथ प्राचीन भारतीय इतिहास, सभ्यता एवं संस्कृति की जानकारी प्राप्त करने में हमारी सहायता करते हैं।

उपवेद एवं षड्दर्शन—वैदिक साहित्य की श्रेणी में उपवेदों और भारतीय दर्शन की 6 शाखाओं (षड्दर्शन) को भी स्थान दिया जाता है। उपवेद में सबसे प्रमुख स्थान **आयुर्वेद** का है। इसके अंतर्गत विभिन्न रोगों की पहचान, उनकी दवा, जड़ी-बूटियों आदि का महत्त्व बताया गया है। कहा जाता है कि इस विद्या के जन्मदाता प्रजापति (ब्रह्मा) थे। आयुर्वेद के आठ भाग हैं—शल्य, शालाक्य, काय-चिकित्सा, भूतविद्या, कुमारभृत्य, अगदतंत्र, रसायन और वाजीकरण।[2] अन्य उपवेदों में **धनुर्वेद** (युद्धकला), **गंधर्ववेद** (संगीतकला) और **शिल्पवेद** (भवननिर्माणकला) आते हैं। धनुर्वेद के जन्मदाता विश्वामित्र, गंधर्व के नारद और शिल्प के विश्वकर्मा माने जाते हैं। इन ग्रंथों से प्राचीन भारत में प्रचलित विभिन्न विधाओं का ज्ञान हमें प्राप्त होता है। दर्शन की शाखाओं में न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, पूर्वमीमांसा और उत्तरमीमांसा आते हैं। इनसे भारतीय दर्शन के विभिन्न आयामों का पता चलता है। इनका रचना काल छठी शताब्दी ई० पू० से तीसरी शताब्दी ई० पू० माना जाता है। **न्याय दर्शन** के प्रवर्तक गौतम थे जिन्होंने तर्क पर बल दिया। **वैशेषिक दर्शन** के संस्थापक कणद ऋषि थे जिन्होंने पदार्थ को अपने दर्शन का आधार बनाया। **सांख्य दर्शन** ईश्वर में विश्वास नहीं रखता है। कपिल ने इसकी

व्याख्या की। योगदर्शन को प्रभावशाली बनानेवाले पतंजलि थे। जैमिनी **पूर्व मीमांसा** और बदरायण **उत्तर मीमांसा** के प्रतिपादक थे। इन दोनों ने क्रमशः व्यावहारिक धर्म और ब्रह्म के महत्त्व पर बल दिया।

महाकाव्य—उपर्युक्त ब्राह्मणग्रंथ धार्मिक कोटि के हैं। इनके अतिरिक्त अनेक ब्राह्मण ग्रंथ ऐसे हैं, जो धर्मप्रधान होते हुए भी राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक जीवन पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश डालते हैं। इन्हें अर्द्ध-ऐतिहासिक धर्मग्रंथ की श्रेणी में रखा जा सकता है। ऐसे ग्रंथों में सबसे प्रमुख **महाकाव्य रामायण** और **महाभारत** तथा **पुराण** आते हैं। **रामायण** में राम के रूप में एक आदर्श राजा की कहानी कही गई है। यद्यपि राजनीतिक इतिहास की जानकारी के लिए यह ग्रंथ उतना उपयोगी नहीं है जितना **महाभारत,** फिर भी सांस्कृतिक अध्ययन के लिए **रामायण** की उपयोगिता एवं इसके महत्त्व को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। इसकी कथावस्तु की ऐतिहासिकता और समय निश्चित नहीं है, परंतु अनुमान किया जाता है कि बाल्मीकिकृत **रामायण** का अंतिम संकलन गुप्तकाल में हुआ। रामायण में मूलतः 6,000 पद्य थे जिन्हें विस्तृत कर बाद में 24,000 किया गया। प्रो॰ रामशरण शर्मा के अनुसार **रामायण** की रचना पाँचवीं शताब्दी ई॰ पू॰ में आरंभ हुई और बारहवीं सदी तक पाँच चरणों में पूरी हुई। उनका यह भी मानना है कि **रामायण** की रचना **महाभारत** के बाद हुई। **रामायण** की अपेक्षा वेदव्यास-लिखित **महाभारत** अधिक महत्त्वपूर्ण है। लगभग 950 ई॰ पू॰ में हुए 'भरत-युद्ध' का विस्तृत रूप ही **महाभारत** है। इसका भी अंतिम संकलन गुप्तकाल में ही हुआ। राजनीतिक महत्त्व की अनेक बातें जैसे मगध, विदेह आदि राज्य, यूनानी, सिथियन जैसी विदेशी जातियों का उल्लेख, राज्य और राजा-संबंधी सिद्धांत, मंत्रिपरिषद, विभिन्न सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक क्रियाकलाप का विशद विवरण इस ग्रंथ से प्राप्त होता है। **महाभारत** में आरंभ में सिर्फ 8,800 पद्य थे और इसे **जय** के नाम से जाना जाता था। बाद में इसकी संख्या बढ़कर 24,000 हो गई। अब यह **भरत** के नाम से विख्यात हुआ। अंतिम संकलन के समय पद्यों की संख्या 1,00,000 हो गई। तब यह **महाभारत** अथवा **शतसहस्री संहिता** के नाम से विख्यात हुआ।

पुराण—महाकाव्यों के पश्चात पुराणों का स्थान आता है। प्राचीन भारत की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक इतिहास की जानकारी प्राप्त करने के लिए हमें पुराणों का सहारा लेना पड़ता है। पुराणों की रचना भी गुप्तकाल में ही प्रारंभ हुई, परंतु अनेक पुराणों की रचना बाद में हुई। प्रमुख पुराणों की संख्या 18 है। ये अठारह **पुराण** हैं—**ब्रह्मपुराण, पद्मपुराण, विष्णुपुराण, शिवपुराण, भागवतपुराण, नारदीयपुराण, मार्कण्डेयपुराण, अग्निपुराण, भविष्यपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, लिंगपुराण, बराहपुराण, स्कंदपुराण, वामनपुराण, कूर्मपुराण, मत्स्यपुराण, गरुड़पुराण** और **ब्रह्मांडपुराण**। जैसा स्पष्ट है, अनेक पुराणों का नामकरण विभिन्न देवताओं और जीवों के नाम पर किया गया। पुराणों में संकलित राजवंशावलियों से अनेक प्राचीन राजवंशों के इतिहास के विषय में जानकारी मिलती है। पुराणों में शिशुनागवंश, नंदवंश, मौर्यवंश, शुंग-कण्ववंश, आंध्र-सातवाहनवंश और गुप्तवंश के शासकों का उल्लेख किया गया है। प्रशासनिक, धार्मिक आर्थिक और सांस्कृतिक महत्त्व की अनेक सूचनाएँ भी इनमें विद्यमान हैं। अनेक निहित त्रुटियों के बावजूद **पुराण** प्राचीन भारतीय इतिहास के महत्त्वपूर्ण स्रोत हैं। इनकी रचना संस्कृत में हुई थी।

स्मृति अथवा धर्मशास्त्र—प्राचीन भारतीय इतिहास के एक महत्त्वपूर्ण स्रोत के रूप में **स्मृति** अथवा **धर्मशास्त्र** का भी उल्लेख किया जा सकता है। यद्यपि स्मृति ग्रंथों से राजनीतिक इतिहास पर प्रकाश नहीं पड़ता है, परंतु सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक व्यवस्था पर इनसे महत्त्वपूर्ण जानकारी मिलती है। स्मृतियों में सबसे महत्त्वपूर्ण **मनुस्मृति** अथवा **मानव धर्मशास्त्र** है। इसकी रचना लगभग 200 ई॰ पू॰ से 200 ई॰ के मध्य हुई थी। अन्य स्मृतियों में उल्लेखनीय हैं **याज्ञवलक्य, विष्णु** और **नारदस्मृति**। अधिकांश स्मृतियों की रचना गुप्त और गुप्तोत्तर काल में हुई। इन पर अनेक टीकाएँ भी लिखी गईं। स्मृतियों में राजधर्म और सामाजिक नियमों का उल्लेख किया गया है। इन नियमों को कानून का दर्जा दिया गया। स्मृतियों के प्रावधानों को भंग करनेवालों के लिए दंड की भी व्यवस्था की गई।

(ख) बौद्ध-धर्मग्रंथ—ब्राह्मण-धर्मग्रंथों की ही तरह बौद्ध धर्मग्रंथ भी इतिहास के पुनर्निर्माण में बहुमूल्य योगदान करते हैं। बौद्धधर्म के उद्भव और विकास के साथ ही एक विशाल साहित्य की भी रचना हुई। यद्यपि ब्राह्मणग्रंथों की तरह बौद्ध धर्मग्रंथ भी धर्मप्रधान साहित्य हैं, तथापि इनमें प्रशासनिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और सांस्कृतिक महत्त्व की अनेक बातें देखने को मिलती हैं। आरंभिक बौद्धग्रंथ पालि-भाषा में लिखे गए थे। **अंगुत्तर निकाय** में छठी शताब्दी ई० पू० के सोलह महाजनपदों का उल्लेख मिलता है। **खुद्दकनिकाय** में जातक कथाओं (करीब 547) का वर्णन किया गया है। यद्यपि मूलरूप से जातक कथाएँ बुद्ध के पूर्वजीवन से संबद्ध हैं, तथापि इन गाथाओं से 3-4 शताब्दी ई० तक के जीवन की झाँकी मिलती है। जातकों से गणतंत्रों, नागरिक जीवन, प्रशासनिक व्यवस्था, अस्पृश्यता, दासों की स्थिति, व्यापार-वाणिज्य के प्रचार-प्रसार आदि की जानकारी प्राप्त होती है। जातक कथाओं में बुद्ध के समकालीन राजाओं के नामों का भी उल्लेख मिलता है। मगध, काशी, कोशल, अंग इत्यादि राज्यों के इतिहास पर भी इनसे प्रकाश पड़ता है। **त्रिपिटक** का पालि-साहित्य में विशेष महत्त्व है। तीन विभिन्न बौद्धग्रंथों का सम्मिलित नाम ही **त्रिपिटक** है। बुद्ध के निर्वाण के पश्चात इनकी रचना हुई थी। **सुत्तपिटक** में बुद्ध के धार्मिक विचारों और प्रवचनों का संग्रह है, **अभिधम्मपिटक** में दार्शनिक सिद्धांतों का संकलन है और **विनयपिटक** में संघ से संबद्ध नियमों की चर्चा की गई है। इन तीनों ग्रंथों से बौद्धधर्म के मूल तत्त्व, उनके प्रसार एवं बौद्धसंघों के संगठन का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। पालि-भाषा में भी संस्कृत की तरह महाकाव्यों की रचना हुई। इनमें प्रमुख **दीपवंश** और **महावंश हैं,** जिनकी रचना श्रीलंका में हुई। अन्य प्रमुख बौद्धग्रंथों में **अशोकावदान, अवदानशतक, दिव्यावदान, बुद्धचरित, सौंदरनंद, मिलिंदपञ्हो, ललितविस्तर, आर्यमंजुश्रीमूलकल्प** इत्यादि ग्रंथों से भारतीय इतिहास के विभिन्न पहलुओं की जानकारी प्राप्त की जा सकती है। अनेक बौद्धग्रंथ संस्कृत में भी लिखे गए।

(ग) जैन धर्मग्रंथ—जैन धर्मग्रंथों की रचना मुख्यतया प्राकृत-भाषा में हुई। संस्कृत और पालि-साहित्य के समान प्राकृत-साहित्य भी प्राचीन भारतीय इतिहास की जानकारी का एक प्रमुख स्रोत है। इससे भी राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक जीवन की जानकारी मिलती है। जैनग्रंथों में प्रमुख **परिशिष्टपर्व, आचारांगसुत्त, कल्पसुत्त, भगवतीसुत्त, उवासगदसाओसुत्त, भद्रबाहुचरित्र, त्रिषष्टिशलाका, पुरुषचरित** इत्यादि महत्त्वपूर्ण हैं। इन ग्रंथों से महावीर की जीवनी एवं जैनधर्म के उपदेशों के साथ-साथ तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था का भी ज्ञान प्राप्त होता है। जैनग्रंथों का संकलन गुजरात (वल्लभी) में ईसा की छठी शताब्दी में हुई। जैनग्रंथों से पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार के विषय में पर्याप्त जानकारी मिलती है। पूर्व मध्यकाल में भी अनेक जैनग्रंथों की रचना हुई। हरिभद्र ने **समरईचकथा, धूर्ताख्यान,** उद्योतन सूरी ने **कुवलयमाला,** जिनसेन ने **आदिपुराण** तथा गुणभद्र ने **उत्तरपुराण** की रचना की। इससे राजनीतिक इतिहास के अतिरिक्त सांस्कृतिक इतिहास पर भी प्रकाश पड़ता है।

(घ) धर्मनिरपेक्ष साहित्य—ऊपर जिन रचनाओं का उल्लेख किया गया है, वे धर्मप्रधान ग्रंथ हैं। वे मूलतः धार्मिक दृष्टिकोण से लिखे गए थे; परंतु इनके अतिरिक्त प्राचीन भारत में अनेक धर्मनिरपेक्ष, ऐतिहासिक और अर्द्ध-ऐतिहासिक ग्रंथों की भी रचना हुई, जिनका इतिहास के पुनर्निर्माण में महत्त्व है। ऐसे ग्रंथों में सबसे प्रमुख **अर्थशास्त्र** और **राजतरंगिणी** हैं।

अर्थशास्त्र की रचना चाणक्य, कौटिल्य या विष्णुगुप्त ने मौर्यकाल में की; यद्यपि इसे बाद में भी बढ़ाया गया। यह नीतिशास्त्र पर उपलब्ध सबसे महत्त्वपूर्ण भारतीय ग्रंथ है। इसमें राज्य की उत्पत्ति, उसका संगठन, उसकी सुरक्षा के उपाय, राजा के अधिकार और कर्तव्य, मंत्रियों एवं अधिकारियों की नियुक्ति के नियम, सामाजिक संस्थाएँ, आर्थिक क्रियाकलाप इत्यादि विषयों का विशद विवरण प्रस्तुत किया गया है। **अर्थशास्त्र** में मौर्यकालीन प्रशासनिक व्यवस्था की, विशेषतया चंद्रगुप्त मौर्य के प्रशासन की, अच्छी जानकारी मिलती है। **अर्थशास्त्र** 15 अधिकरणों और 180 प्रकरणों में विभक्त है। अर्थशास्त्र की विषयवस्तु बहुत कुछ यूनानी दार्शनिक अरस्तू के **पॉलिटिक्स** और मेकियावेली के **प्रिंस** से मिलती-जुलती है।

प्राचीन भारत के ऐतिहासिक ग्रंथों में कल्हण की **राजतरंगिणी** का उल्लेख किया जा सकता है। इसकी रचना 12वीं शताब्दी में हुई थी। इसमें कश्मीर के राजनीतिक इतिहास का वर्णन

तो किया ही गया है, साथ-साथ सांस्कृतिक जीवन पर भी इस ग्रंथ से महत्त्वपूर्ण जानकारी मिलती है। अनेक विद्वानों की धारणा है कि प्राचीन भारत का यह एकमात्र ऐतिहासिक ग्रंथ है।[1]

इसी प्रकार, पाणिनि की **अष्टाध्यायी** गणतंत्रात्मक व्यवस्था की अच्छी जानकारी देती है। पतंजलि का **महाभाष्य** शुंगवंश के इतिहास की जानकारी के लिए आवश्यक है। विशाखदत्त के नाटक **मुद्राराक्षस** से नंदों और मौर्यों के इतिहास पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। **गार्गीसंहिता** यवनों के आक्रमण के विषय में बताता है। कालिदास (**अभिज्ञानशाकुंतलम्, मालविकाग्निमित्रम्, रघुवंशम्, मेघदूतम्**), शूद्रक (**मृच्छकटिकम्**), वात्स्यायन (**कामसूत्रम्**), दण्डी (**दशकुमारचरितम्**) इत्यादि की रचनाएँ तत्कालीन सभ्यता-संस्कृति को दरसाती हैं। गुप्तोत्तर काल के इतिहास की जानकारी का एक प्रमुख स्रोत जीवनचरित और स्थानीय इतिहास है। वाण, वाकपति, विल्हण, संध्याकर नंदी एवं अन्य दरबारी इतिहासकारों ने अपने संरक्षकों की जीवनियाँ लिखीं। अनेक त्रुटियों के बावजूद इनसे तत्कालीन स्थिति पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है। हर्षवर्द्धन के राज्य और उसके समय की जानकारी बाण के **हर्षचरित** और **कादंबरी** से मिलती है। हर्षवर्द्धन ने स्वयं तीन नाटकों की रचना की—**नागानंद, रत्नावली** और **प्रियदर्शिका**। इन नाटकों से हर्षकालीन सभ्यता-संस्कृति एवं राजनीतिक जीवन की झाँकी मिलती है। अन्य महत्त्वपूर्ण ग्रंथ जो भारतीय इतिहास और सभ्यता की जानकारी उपलब्ध कराते हैं, उनमें **कथासरित्सागर, विक्रमांकदेवचरित** (विल्हण), **कुमारपालचरित** (हेमचंद्र), **रामचरित** (संध्याकर नंदी), **कीर्तिकौमुदी** (सोमेश्वर), **वल्लालचरित** (आनंदभट्ट), **पृथ्वीराजविजय** (जयानक), **पृथ्वीराजरासो** (चंदबरदाई), **गौड़वाहो** (वाकपति) इत्यादि का उल्लेख किया जा सकता है। दक्षिण भारत में भी अनेक ऐतिहासिक ग्रंथों एवं चरितावलियों की रचना हुई। यद्यपि चरितावलियों में राजा विशेष की उपलब्धियों को अतिशयोक्तिपूर्ण ढंग से दिखाया गया है तथापि इनसे तत्कालीन विषय पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है। उदाहरणस्वरूप, **रामचरित** पाल-शासक रामपाल के समय बंगाल में हुए कैवर्त विद्रोह और उसमें रामपाल की विजय का उल्लेख करता है। इसी प्रकार **विक्रमांकदेवचरित** में चालुक्य राजा विक्रमादित्य की उपलब्धियों का उल्लेख मिलता है। 11वीं शताब्दी में लिखित अतुल के **मुषिक वंश** नामक ग्रंथ से केरल के मुषिक वंश के इतिहास पर प्रकाश पड़ता है। गुजरात में अनेक व्यापारियों के भी जीवन चरित लिखे गए। ये सभी ग्रंथ इतिहास के अमूल्य स्रोत हैं। इसी प्रकार **नन्दिककलम्बकम** में पल्लव राजा नंदिवर्मा तृतीय तथा **कलिंगतुपरणि** से चोल राजा कुलोत्तुंग प्रथम द्वारा कलिंग पर आक्रमण की जानकारी मिलती है। **रासमाला, प्रबंधकोश, चचनामा** एवं नेपाल में लिखे गए इतिवृत्त क्रमशः गुजरात, सिंध और नेपाल के इतिहास पर प्रकाश डालते हैं।

संगम साहित्य—संस्कृत साहित्य के अतिरिक्त तमिल साहित्य से भी प्राचीन भारतीय इतिहास की जानकारी मिलती है। तमिल साहित्य में **संगम साहित्य** का विशेष रूप से उल्लेख किया जा सकता है। इस साहित्य का विकास 3-4 शताब्दियों में हुआ। इसका काल ईसा की प्रथम चार शताब्दियों को माना जाता है। संगम साहित्य का एक बड़ा भंडार उपलब्ध है। संगम साहित्य में प्रमुख हैं **एतुतोकई** (Ettuttokai), **पुरननुरू** (Purananuru), **पतुपतु** (Pattuppattu) तथा **शिलापदिकारम्** (Silappadikaram)। इस साहित्य में दक्षिण के तीन प्रमुख राजवंशों—पांड्य, चोल और चेर—के आरंभिक इतिहास का उल्लेख मिलता है। राजनीतिक इतिहास के अतिरिक्त सामाजिक व्यवस्था और आर्थिक प्रगति, विशेषकर उद्योग-धंधे और विदेशी व्यापार के विकास पर भी संगम साहित्य से महत्त्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। यह साहित्य धर्म निरपेक्ष है। इसमें दक्षिण भारत के अनेक राजाओं और उनकी उपलब्धियों का उल्लेख मिलना है तथापि राजनीतिक इतिहास से अधिक महत्त्वपूर्ण जानकारी सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था के विषय में मिलती है।

2.1(b). विदेशी यात्रियों के विवरण *(Foreign Travellers' Accounts)*

भारतीय साहित्य के अतिरिक्त विदेशी साहित्य भी भारतीय इतिहास के पुनर्निमाण में सहायता प्रदान करता है। इन ग्रंथों की महत्ता इसलिए बढ़ जाती है, क्योंकि अधिकांश भारतीय साहित्य

की निश्चित तिथि तय करना दुष्कर है। इन ग्रंथों में तिथिक्रम का सर्वथा अभाव पाया जाता है। साथ-ही-साथ, चूँकि अधिकांश ग्रंथ धार्मिक भावना या किसी निश्चित उद्देश्य से प्रेरित होकर लिखे गए थे, इसलिए वे पूर्णतः निरपेक्ष नहीं हैं। फलतः, इनसे सही स्थिति की जानकारी नहीं मिल पाती। ऐसी स्थिति में हमें विदेशी यात्रियों के विवरणों की तरफ ध्यान देना पड़ता है। वे यात्री निश्चित समय में भारत आए, उन्होंने यहाँ की व्यवस्था को स्वयं देखा और उसका वर्णन किया। अतः, अनेक त्रुटियों के बावजूद ये ग्रंथ तिथिक्रम के आधार पर ज्यादा प्रामाणिक प्रतीत होते हैं। भारत के संबंध में जिन विदेशियों ने लिखा है उनमें ईरानी, यूनानी, रोमन, चीनी, तिब्बती, अरब एवं मुसलमान यात्रियों और लेखकों के विवरण महत्त्वपूर्ण हैं।

ईरानी, यूनानी एवं रोमन वृत्तांत—भारत का विदेशों से प्राचीन काल से संबंध रहा है। सिंधुघाटी की सभ्यता के समय से ही भारतीयों ने विदेशों से संबंध स्थापित कर लिए थे, परंतु इस तथ्य की पुष्टि के लिए हमारे पास पुरातात्त्विक प्रमाणों के अतिरिक्त साहित्यिक प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं। बाद में ईरान और यूनान से भारत के संबंध बने। इनकी पुष्टि साहित्यिक स्रोतों से होती है। यूनानी इतिहासकार हेरोडोट्स के विवरण से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि यूनानियों के प्रभाव में आने के पूर्व ही भारतीय ईरान के संपर्क में आ चुके थे। हेरोडोट्स के अनुसार डेरियस प्रथम ने फारस के एक यूनानी सैनिक स्काइलैक्स को सिंधु नदी के मार्ग का पता लगाने को भेजा था। उसने सिंधु नदी से ईरान तक के जलमार्ग को खोजा। इससे प्रेरणा लेकर हिकेटिअस मिलेटस नामक दूसरे यूनानी लेखक ने एक भूगोल की पुस्तक लिखी, जिसमें सिंधुप्रदेश का प्राचीन विवरण उपलब्ध है। अपनी **हिस्टोरिका** में भी हेरोडोट्स भारत का विवरण किया है। इसी प्रकार केसिअस के विवरणों से भी भारत के विषय में जानकारी मिलती है।

सिकंदर के भारत-आक्रमण के समय अनेक यूनानी लेखक भारत आए जिन्होंने यहाँ की स्थिति के विषय में लिखा। वस्तुतः, भारत पर सिकंदर के आक्रमण की बात इन्हीं लेखकों से ज्ञात होती है। भारतीय ग्रंथों में तो इसका उल्लेख ही नहीं मिलता। इन लेखकों के मूल लेख उपलब्ध नहीं हैं, परंतु बाद के ग्रीक और लैटिन साहित्य में इनका उल्लेख मिलता है। ऐसे लेखकों में अरिस्टोबुलस, निआर्कस, चारस, यूमेनीस, ओनेसिक्रिटस इत्यादि प्रसिद्ध हैं। अरिस्टोबुलस ने **हिस्ट्री ऑफ दि वार** *(History of the War)* नामक पुस्तक लिखी। ओनेसिक्रिटस ने **सिकंदर की जीवनी** लिखी।

सिकंदर के पश्चात भी अनेक यूनानी और रोमन लेखकों ने भारत पर लिखा। इन लेखकों में सबसे प्रसिद्ध सेल्यूक्स निकेटर का राजदूत **मेगास्थनीज** था। वह चंद्रगुप्त मौर्य के दरबार में (पाटलिपुत्र) आया और बहुत दिनों तक यहाँ रहा। अपनी पुस्तक **इण्डिका** (Indica) में उसने पाटलिपुत्र नगर, राजा के व्यक्तिगत जीवन, प्रशासनिक व्यवस्था एवं भारत की तत्कालीन अवस्था का वर्णन किया है। यद्यपि इस ग्रंथ में अनेक अतिशयोक्तियाँ हैं, तथापि चंद्रगुप्त मौर्य के समय की अच्छी जानकारी इससे मिलती है। दुर्भाग्यवश **इण्डिका** अपने मूलरूप में उपलब्ध नहीं है। बाद के लेखकों के उद्धरणों के आधार पर इसका संकलन संभव हो सका है। अन्य लेखकों में (यूनानी और रोमन) स्ट्रैबो, डायोनीसियस, कर्टियस, डायोडोरस सिकुलस, पोलिविअस, प्लिनी, टॉलेमी इत्यादि के नाम महत्त्वपूर्ण हैं। प्लिनी ने **प्राकृतिक इतिहास** *(Natural History)* और टॉलेमी ने **भूगोल** *(Geography)* लिखी। ईसा की पहली शताब्दी में एक अज्ञात नाविक ने **पेरिप्लस ऑफ दि एरिथ्रियन सी** *(Periplus of the Erythraean Sea)* नामक पुस्तक लिखी, जिससे भारत का पश्चिमी जगत से व्यापारिक संबंध स्पष्ट होता है।

चीनी एवं तिब्बती लेखकों के विवरण—यूनानी और रोमन यात्रा-वृत्तांतों के ही समान चीनी एवं तिब्बती विवरणों से भी भारतीय इतिहास की जानकारी मिलती है। शुमाचीन प्रथम चीनी लेखक है, जिसके लेखों से भारत के विषय में जानकारी मिलती है। दूसरा प्रसिद्ध चीनी लेखक फाहियान है। वह 399 ई० में भारत आया। भारत में वह लगभग 15 वर्षों तक रहा। इस दौरान उसने भारत के प्रमुख बौद्ध विहारों का भ्रमण किया। चीन वापस लौटकर उसने अपनी यात्रा को लिपिबद्ध किया *(The Travels of Fa-hien)*। फाहियान के विवरण से गुप्तकालीन इतिहास, सभ्यता और संस्कृति की अच्छी जानकारी मिलती है। दूसरा प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वेनसांग या युवान-च्वांग था, जो 629 ई० में भारत आया। उसने भी भारत के प्रसिद्ध

बौद्ध केंद्रों का भ्रमण किया। **पाश्चात्य संसार के लेख** *(Records of the Western World)* नामक पुस्तक में उसने अपनी यात्रा का विवरण प्रस्तुत किया है। सातपीं शताब्दी के भारतीय इतिहास और संस्कृति, विशेषकर हर्षवर्द्धन की जीवनी, उसके कार्यकलाप, प्रशासनिक, धार्मिक, शैक्षणिक व्यवस्था आदि पर इस ग्रंथ से अच्छा प्रकाश पड़ता है। बाद में हुईली ने **युवानच्वांग की जीवनी** (*The Life of Hsuan-Tsiang*) लिखी। इससे भी सातपीं शताब्दी के भारतीय इतिहास की जानकारी मिलती है। बाद में इत्सिंग भी भारत आया। अन्य अनेक चीनी यात्री भी भारत आए। इनके विवरण भारत के विषय में बहुमूल्य जानकारी उपलब्ध कराते हैं।

चीनी यात्रियों के ही समान तिब्बती यात्रियों के विवरण भी भारतीय इतिहास के पुनर्निर्माण में सहायक सिद्ध होते हैं। तिब्बती लेखकों में सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान लामा तारानाथ का है। उसकी पुस्तक **बौद्धधर्म का इतिहास** *(History of Buddhism)* पूर्व-मध्यकालीन भारतीय इतिहास के अध्ययन का एक महत्त्वपूर्ण स्रोत है। धर्मस्वामी के विवरणों से भी तेरहवीं शताब्दी के इतिहास पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। उसके विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि तेरहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में भी नालंदा महाविहार पूरी तरह नष्ट नहीं हुआ था। तत्कालीन राजनीतिक इतिहास पर भी धर्मस्वामी के यात्रा-वृतांत से प्रकाश पड़ता है।

अरब एवं मुसलमान लेखकों के विवरण—8वीं शताब्दी में अरबों की सिंध पर विजय के पश्चात भारत का अरब संसार से संबंध बढ़ गया। अनेक व्यापारी, यात्री अब भारत आने लगे। उनलोगों ने भारत का वर्णन अपने लेखों में किया। तुर्की आक्रमण के समय से अनेक मुसलमान लेखक भी भारत आए, जिन्होंने यहाँ की स्थिति का वर्णन किया। ऐसे लेखकों में सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान अलबेरूनी का है। उसने **तहकीकेहिंद** *(Tahqiq-i-Hind)* में ग्यारहवीं शताब्दी के भारत का अच्छा वर्णन किया है। अलबेरूनी के अतिरिक्त अल-बिलादुरी, सुलेमान, मिनहाजुद्दीन, अलमसूदी, फरिश्ता और मार्कोपोलो के विवरणों से भी पूर्व-मध्यकालीन भारतीय इतिहास की जानकारी प्राप्त होती है।

2.1(c). साहित्यिक स्रोतों की त्रुटियाँ एवं पुरातात्त्विक स्रोतों का महत्त्व *(Weakness of Literary Sources and Importance of Archaeological Sources)*

साहित्यिक स्रोतों से यद्यपि अनेक महत्त्वपूर्ण विवरणों और घटनाओं का ज्ञान प्राप्त होता है, तथापि सिर्फ इनके आधार पर ही निरपेक्ष ढंग से भारतीय इतिहास की रचना नहीं की जा सकती। साहित्यिक ग्रंथों में अनेक त्रुटियाँ हैं। देशी साहित्य में तिथिक्रम का अभाव है। उनके काल-निर्धारण की समस्या सबसे विकट है। अधिकांश ग्रंथ धार्मिक भावना या पूर्वाग्रह से प्रेरित होकर लिखे गए हैं। उनके विवरण भी अतिरंजित हैं। साहित्यिक स्रोतों में स्तरीकरण की भी समस्या है। इसी प्रकार साहित्यिक ग्रंथों में जो विवरण उपलब्ध हैं उन्हें समस्त भारत के इतिहास की जानकारी के लिए उपयोग में नहीं लाया जा सकता है। वे क्षेत्रविशेष की जानकारी सामान्यतः प्रदान करते हैं। अतः, साहित्यिक साधनों से प्राप्त जानकारी निष्पक्ष नहीं कही जा सकती। ऐसी स्थिति में हमें पुरातात्त्विक प्रमाणों का सहारा लेना पड़ता है। इनके काल-निर्धारण की समस्या उतनी विकट नहीं है; इनसे प्राप्त जानकारी अतिशयोक्तिपूर्ण या धार्मिक भावना से प्रेरित भी नहीं है। अतः, साहित्यिक स्रोतों की अपेक्षा पुरातात्त्विक सामग्री निरपेक्ष इतिहास-लेखन में ज्यादा उपयोगी सिद्ध हो सकती है। पुरातात्त्विक स्रोत भी अनेक प्रकार के हैं; जैसे : उत्खनन से प्राप्त सामग्री—सिक्के, अभिलेख, प्राचीन स्मारक एवं कलाकृतियाँ।

उत्खननों से प्राप्त सामग्री—उत्खननों एवं उनसे प्राप्त सामग्री के आधार पर अनेक प्राचीन स्थानों तथा वहाँ पर व्याप्त सभ्यता एवं संस्कृति का पता लगाया जा सकता है। 19-20वीं शताब्दी में भारत में जो उत्खनन हुए हैं, उनसे भारतीय प्रागैतिहासिक एवं ऐतिहासिक काल पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। उदाहरणस्वरूप, हड़प्पा-सभ्यता का ज्ञान उत्खननों के पश्चात ही हो सका है। इसी प्रकार पाटलिपुत्र, वैशाली, चिराँद, चम्पा, विक्रमशिला, नालंदा, मथुरा, कौशांबी, हस्तिनापुर इत्यादि स्थलों की खुदाइयों, उनसे प्राप्त मिट्टी के बरतनों, ईंटों के व्यवहार, धातु, पत्थर, काँच इत्यादि के सामानों के आधार पर उक्त स्थल-विशेष पर किसी निश्चित समय में

प्रचलित सभ्यता का पता आसानी से लगाया जा सकता है। उत्खननों से प्राप्त सामग्री के आधार पर ही पाषाण काल के विभिन्न चरणों, ताम्र-पाषाणिक काल एवं विभिन्न संस्कृतियों तथा इतिहासकालीन भौतिक जीवन की प्रामाणिक जानकारी मिलती है। इस सामग्री का वैज्ञानिक परीक्षण कर उसकी वास्तविक तिथि निर्धारित की जाती है। तिथि निर्धारण के लिए C-14 विधि का सहारा लिया जाता है। अन्य वैज्ञानिक प्रक्रियाओं की सहायता से भी भौतिक जीवन की जानकारी मिलती है। इस सामग्री के आधार पर मानव के वास्तविक भौतिक जीवन का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। साहित्यिक स्रोतों के विपरीत इसमें अतिशयोक्ति या पूर्वाग्रह की मात्रा नहीं के बराबर है।

अभिलेख—पुरातात्त्विक स्रोतों में दूसरा महत्त्वपूर्ण स्रोत अभिलेख हैं। भारत में अनेक अभिलेख मिले हैं। कुछ अभिलेख भारत के बाहर भी पाए गए हैं जिनसे भारतीय इतिहास पर प्रकाश पड़ता है। उदाहरण के लिए, एशिया माइनर क़ा बोगजकोई अभिलेख अनेक वैदिक देवताओं, इंद्र, वरुण, मित्र आदि का उल्लेख करता है। सुमेर (मेसोपोटामिया या ईराक) से प्राप्त मिट्टी के उत्कीर्ण मुहरों से भारत (सिंधुघाटी) और सुमेर के व्यापारिक संबंधों का पता चलता है।

भारतीय अभिलेखों की श्रेणी बहुत बड़ी है। ये अधिकतर पत्थर या ताम्रपत्रों पर उत्कीर्ण हैं। अनेक अभिलेख मूर्तियों पर तथा मंदिर की दीवारों पर भी खुदवाए गए। मुहरों पर भी अनेक लेख मिले हैं। सिर्फ सिंधुघाटी की सभ्यता से ही मुहरों पर उत्कीर्ण अनेक अभिलेख मिले हैं, जिन्हें दुर्भाग्यवश अभी तक संतोषप्रद ढंग से नहीं पढ़ा जा सका है। ऐतिहासिक काल में सबसे प्राचीन अभिलेख मौर्य-सम्राट अशोक के हैं, जो गुफाओं, शिलाओं और स्तंभों पर उत्कीर्ण हैं। इनसे अशोक के राज्यकाल की अनेक प्रमुख घटनाओं, जैसे—कलिंग-युद्ध, धर्ममहामात्रों की नियुक्ति, प्रशासनिक व्यवस्था में परिवर्तन एवं सुधार इत्यादि की जानकारी मिलती है। कलिंग के शासक खारवेल का हाथीगुम्फा-अभिलेख, मिलिंद का रेह-अभिलेख, रुद्रादामन का जूनागढ़-अभिलेख, कनिष्क एवं अन्य कुषाण-शासकों के अभिलेख भारतीय इतिहास की अनेक विस्मृत घटनाओं से हमारा परिचय कराते हैं। इसी प्रकार समुद्रगुप्त की प्रयाग-प्रशस्ति, राजा चंद्र का मेहरौली-अभिलेख, स्कंदगुप्त का भिटारी-अभिलेख, हर्षवर्द्धन का मधुवन एवं बाँसखेड़ा-अभिलेख, पालशासकों के अभिलेख, दक्षिण भारत के सातवाहनों, चोलों, चालुक्यों, राष्ट्रकूटों आदि के अभिलेखों से राजनीतिक इतिहास के अतिरिक्त प्रशासनिक, सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक एवं धार्मिक स्थिति की जानकारी मिलती है। गुप्तकाल की भूमि-व्यवस्था की जानकारी प्राप्त करने के लिए अभिलेख महत्त्वपूर्ण साधन हैं। इन अभिलेखों की प्रामाणिकता एवं उपयोगिता इसलिए बढ़ जाती है कि बहुत-से अभिलेखों में इन्हें जारी करनेवाले शासकों, पदाधिकारियों या व्यक्तियों का उल्लेख किया गया है। अभिलेखों में तिथि रहने से काल-निर्धारण की समस्या भी नहीं रह जाती है। जहाँ तिथि नहीं भी है, वहाँ लिपि के आधार पर काल-निर्धारण किया जा सकता है। अभिलेखों से अनेक साहित्यिक विवरणों की भी पुष्टि हो जाती है। हड़प्पाकालीन अभिलेखों के बाद प्राचीनतम अभिलेख अशोक के हैं। आरंभिक अभिलेख प्राकृत भाषा में लिखे गए। बाद में संस्कृत एवं अन्य भाषाओं जैसे तमिल, तेलगु इत्यादि में भी अभिलेख लिखे गए। अधिकांश अभिलेख ब्राह्मी लिपि में लिखे गए। यह लिपि बाएँ से दाएँ की ओर लिखी जाती थी। ईसा की प्रथम शताब्दी से खरोष्ठी लिपि का भी व्यवहार हुआ। यह दाहिने से बाएँ की ओर लिखी जाती थी। उत्तर-पश्चिमी सीमा से प्राप्त अशोक के कुछ अभिलेख अरामाईक लिपि में भी पाए गए हैं। अभिलेखों की विभिन्न श्रेणियाँ भी हैं। कुछ अभिलेख राजशासन से संबद्ध हैं तो कुछ प्रशस्ति के रूप में विद्यमान हैं। अनेक अभिलेख दान संबंधी हैं। भूमिदान एवं भूमि हस्तांतरण संबंधी अभिलेख भी बड़ी संख्या में पाए गए हैं। गुप्तोत्तर काल में भूमि अनुदानों से संबद्ध अभिलेखों की बड़ी संख्या है। इनसे भूमि व्यवस्था एवं प्रशासन पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है।

सिक्के—सिक्कों से भी भारतीय इतिहास-लेखन में सहायता मिलती है। सिक्कों से आर्थिक इतिहास के अतिरिक्त राजनीतिक और प्रशासनिक महत्त्व की बातों का भी पता चलता है। काल-निर्धारण में भी सिक्के हमारी सहायता करते हैं। भारत के प्राचीनतम सिक्के आहत सिक्के

(Punch-marked coins) के रूप में विख्यात हैं। इनपर अभिलेख नहीं होते थे। ये अधिकतर ताँबे या चाँदी के बनते थे, जिनपर चिह्न अंकित रहते थे। ऐसे सिक्कों का प्रचलन छठी शताब्दी ई० पू० से आरंभ हुआ। हिंद-यूनानियों के आगमन के साथ ही सिक्कों के स्वरूप में भी परिवर्तन आया। अब इनपर राजाओं के नाम एवं उनकी उपाधियों को भी उत्कीर्ण किया जाने लगा। शासकों की धार्मिक भावनाओं तथा उनकी व्यक्तिगत अभिरुचियों को भी सिक्कों पर दरसाया जाने लगा। अब सोने के सिक्के भी जारी किए गए। सिक्कों के प्राप्तिस्थान के आधार पर किसी राजा के राज्य की सीमा निश्चित करने में कुछ अंश तक सहायता मिल सकती है। यूनानियों, शकों, पार्थियनों, कुषाणों और गुप्त-शासकों के सिक्के बड़ी संख्या में प्राप्त हुए हैं। अनेक रोमन सिक्के भी भारत में पाए गए हैं, जो भारत और रोम के व्यापारिक संबंधों को प्रमाणित करते हैं। गुप्तकाल के पश्चात सिक्कों की संख्या कम हो जाती है, परंतु उत्तर-मौर्यकाल से गुप्तकाल तक के इतिहास की जानकारी सिक्कों की सहायता से प्राप्त की जा सकती है। विगत अनेक वर्षों से गुप्त काल के बाद के भी थोड़े सिक्के मिले हैं, लेकिन महत्त्वपूर्ण शासकों और राजवंशों जैसे हर्षवर्द्धन, पाल शासकों के सिक्के अभी भी प्राप्त नहीं हैं। ईसा की आरंभिक शती के सिक्का ढालने के साँचे (coin-mould) भी बड़ी संख्या में मिले हैं। सोने के सिक्के सर्वाधिक संख्या में गुप्तकाल में जारी किए गए। शासकों, गणतंत्रों एवं नगरों के सिक्कों के अतिरिक्त व्यापारी निगमों द्वारा भी सिक्के जारी किए जाते थे। इनसे अनुमान लगाया जा सकता है कि प्राचीन भारत में स्थानीय इकाइयों को भी प्रशासन में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त था।

स्मारक—प्राचीन स्मारकों से भी इतिहास के पुनर्निर्माण में सहायता मिलती है। प्राचीन भवनों, मंदिरों, गुहाओं के अवशेष, मूर्तियों इत्यादि के आधार पर किसी युगविशेष की संस्कृति एवं कला का पता आसानी से लगाया जा सकता है। हड़प्पा, मोहनजोदाड़ो, तक्षशिला, मथुरा, कौशांबी, पाटलिपुत्र इत्यादि स्थानों से प्राप्त भवनों के अवशेषों के आधार पर नगर-निर्माण शैली का अंदाज मिलता है। इसी प्रकार नालंदा एवं विक्रमशिला के खंडहरों से इन स्थानों की गरिमा प्रकट होती है। तक्षशिला और मथुरा से प्राप्त मूर्तियों के आधार पर गांधार और मथुरा-मूर्तिकला की जानकारी मिलती है। साँची, भरहुत के स्तूप, अजंता, एलोरा, एलिफैंटा, बाघ की गुफाएँ तथा दक्षिण भारत के मंदिर प्राचीन शिल्पकला, मूर्तिकला एवं चित्रकला के विकास पर प्रकाश डालते हैं।

उपर्युक्त विवेचना से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय इतिहास की जानकारी के विविध साहित्यिक एवं पुरातात्त्विक स्रोत हैं। प्रत्येक प्रकार के स्रोत का अपना अलग महत्त्व है। इनमें किसी भी स्रोत पर विशेष बल देने एवं दूसरे की उपेक्षा करने पर सही इतिहास की जानकारी नहीं हो सकती। तुलनात्मक दृष्टि से पुरातात्त्विक प्रमाण अधिक प्रामाणिक होने के बावजूद अपने में पूर्ण नहीं हैं। इसलिए, दोनों प्रकार के स्रोतों के उचित प्रयोग के आधार पर ही निरपेक्ष इतिहास की रचना की जा सकती है।

□ □ □